सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र वंदित सिद्ध जिनवरदेव अर।
सब संयतों को नमन कर इस भावपाहुड़ को कहूँ।।१।।
बस भाव ही गुण-दोष के कारण कहे जिनदेव ने।
भावलिंग ही परधान हैं द्रव्यलिंग न परमार्थ है।।२।।
अर भावशुद्धि के लिए बस परीग्रह का त्याग हो।
रागादि अन्तर में रहें तो विफल समझो त्याग सब।।३।।
वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें।।४।।
परिणामशुद्धि के बिना यदि परीग्रह सब छोड़ दें।
तब भी अरे निज आत्महित का लाभ कुछ होगा नहीं।।५।।

प्रथम जानो भाव को तुम भाव बिन द्रवलिंग से।
तो लाभ कुछ होता नहीं पथ प्राप्त हो पुरुषार्थ से ।।६।।
भाव बिन द्रवलिंग अगणित धरे काल अनादि से।
पर आजतक हे आत्मन् ! सुख रंच भी पाया नहीं ।।७।।
भीषण नरक तिर्यंच नर अर देवगति में भ्रमण कर।
पाये अनन्ते दु:ख अब भावो जिनेश्वर भावना ।।८।।
इन सात नरकों में सतत चिरकाल तक हे आत्मन्।
दारुण भयंकर अर असह्य महान दु:ख तूने सहे ।।९।।
तिर्यंचगति में खनन उत्तापन जलन अर छेदना।
रोकना वध और बंधन आदि दुख तूने सहे ।।१०।।
मानसिक देहिक सहज एवं अचानक आ पड़े।
ये चतुर्विध दुख मनुजगति में आत्मन् तूने सहे ।।११।।
हे महायश सुरलोक में परसंपदा लखकर जला।
देवांगना के विरह में विरहाग्नि में जलता रहा ।।१२।।
पंचविध कांदर्पि आदि भावना भा अशुभतम।
मुनि द्रव्यलिंगी देव हों किल्विषिक आदिक अशुभतम ।।१३।।
पार्श्वस्थ आदि कुभावनायें भवदु:खों की बीज जो।
भाकर उन्हें दुख विविध पाये विविध वार अनादि से ।।१४।।
निज हीनता अर विभूति गुण-ऋद्धि महिमा अन्य की।
लख मानसिक संताप हो है यह अवस्था देव की ।।१५।।
चतुर्विध विकथा कथा आसक्त अर मदमत्त हो।
यह आतमा बहुबार हीन कुदेवपन को प्राप्त हो ।।१६।।
फिर अशुचितम वीभत्स जननी गर्भ में चिरकाल तक।
दुख सहे तूने आजतक अज्ञानवश हे मुनिप्रवर ।।१७।।
अरे तू नरलोक में अगणित जनम धर-धर जिया।
हो उदधि जल से भी अधिक जो दूध जननी का पिया ।।१८।।

तेरे मरण से दुखित जननी नयन से जो जल बहा।
वह उदधिजल से भी अधिक यह वचन जिनवर ने कहा ।।१९।।
ऐसे अनन्ते भव धरे नरदेह के नख-केश सब।
यदि करे कोई इकट्ठे तो ढेर होवे मेरु सम ।।२०।।
परवश हुआ यह रह रहा चिरकाल से आकाश में।
थल अनल जल तरु अनिल उपवन गहन वन गिरि गुफा में ।।२१।।
पुद्गल सभी भक्षण किये उपलब्ध हैं जो लोक में।
बहु बार भक्षण किये पर तृप्ति मिली न रंच भी ।।२२।।
त्रैलोक्य में उपलब्ध जल सब तृषित हो तूने पिया।
पर प्यास फिर भी ना बुझी अब आत्मचिंतन में लगो ।।२३।।
जिस देह में तू रम रहा ऐसी अनन्ती देह तो।
मूरख अनेकों बार तूने प्राप्त करके छोड़ दीं ।।२४।।
शस्त्र श्वासनिरोध एवं रक्तक्षय संक्लेश से।
अर जहर से भय वेदना से आयुक्षय हो मरण हो ।।२५।।
अनिल जल से शीत से पर्वतपतन से वृक्ष से।
परधनहरण परगमन से कुमरण अनेक प्रकार हो ।।२६।।
हे मित्र ! इस विधि नरगति में और गति तिर्यंच में।
बहुविध अनंते दु:ख भोगे भयंकर अपमृत्यु के ।।२७।।
इस जीव ने नीगोद में अन्तरमुहूरत काल में।
छयासठ सहस अर तीन सौ छत्तीस भव धारण किये ।।२८।।
विकलत्रयों के असी एवं साठ अर चालीस भव।
चौबीस भव पंचेन्द्रियों अन्तरमुहूरत छुद्रभव ।।२९।।
रतन त्रय के बिना होता रहा है यह परिणमन।
तुम रतन त्रय धारण करो बस यही है जिनवर कथन ।।३०।।
निज आतमा को जानना सद्ज्ञान रमना चरण है।
निज आतमारत जीव सम्यग्दृष्टि जिनवर कथन है ।।३१।।

तूने अनन्ते जनम में कुमरण किये हे आत्मन्।
अब तो समाधिमरण की भा भावना भवनाशनी।।३२।।
धरकर दिगम्बर वेष बारम्बार इस त्रैलोक में।
स्थान कोई शेष ना जन्मा-मरा ना हो जहाँ।।३३।।
रे भावलिंग बिना जगत में अरे काल अनंत से।
हा ! जन्म और जरा-मरण के दु:ख भोगे जीव ने।।३४।।
परिणाम पुद्गल आयु एवं समय काल प्रदेश में।
तनरूप पुद्गल ग्रहे-त्यागे जीव ने इस लोक में।।३५।।
बिन आठ मध्यप्रदेश राजू तीन सौ चालीस त्रय।
परिमाण के इस लोक में जन्मा-मरा न हो जहाँ।।३६।।
एक-एक अंगुलि में जहाँ पर छयानवें हों व्याधियाँ।
तब पूर्ण तन में तुम बताओ होंगी कितनी व्याधियाँ।।३७।।
पूर्वभव में सहे परवश रोग विविध प्रकार के।
अर सहोगे बहु भाँति अब इससे अधिक हम क्या कहें?।।३८।।
कृमिकलित मज्जा-मांस-मज्जित मलिन महिला उदर में।
नवमास तक कई बार आतम तू रहा है आजतक।।३९।।
तू रहा जननी उदर में जो जननि ने खाया-पिया।
उच्छिष्ट उस आहार को ही तू वहाँ खाता रहा।।४०।।
शिशुकाल में अज्ञान से मल-मूत्र में सोता रहा।
अब अधिक क्या बोलें अरे मल-मूत्र ही खाता रहा।।४१।।
यह देह तो बस हड्डियों श्रोणित बसा अर माँस का।
है पिण्ड इसमें तो सदा मल-मूत्र का आवास है।।४२।।
परिवारमुक्ती मुक्ति ना मुक्ती वही जो भाव से।
यह जानकर हे आत्मन् ! तू छोड़ अन्तरवासना।।४३।।
बाहुबली ने मान बस घरवार ही सब छोड़कर।
तप तपा बारह मास तक ना प्राप्ति केवलज्ञान की।।४४।।

तज भोजनादि प्रवृत्तियाँ मुनिपिंगला रे भावविन।
अरे मात्र निदान से पाया नहीं श्रमणत्व को।।४५।।
इस ही तरह मुनि वशिष्ठ भी इस लोक में थानक नहीं।
रे एक मात्र निदान से घूमा नहीं हो वह जहाँ।।४६।।
चौरासिलख योनीविषें है नहीं कोई थल जहाँ।
रे भावबिन द्रवलिंगधर घूमा नहीं हो तू जहाँ।।४७।।
भाव से ही लिंगी हो द्रवलिंग से लिंगी नहीं।
लिंगभाव ही धारण करो द्रवलिंग से क्या कार्य हो।।४८।।
जिनलिंग धरकर बाहुमुनि निज अंतरंग कषाय से।
दण्डकनगर को भस्मकर रौरव नरक में जा पड़े।।४९।।
इस ही तरह द्रवलिंगी द्वीपायन मुनी भी भ्रष्ट हो।
दुर्गति गमनकर दुख सहे अर अनंत संसारी हुए।।५०।।
शुद्धबुद्धी भावलिंगी अंगनाओं से घिरे।
होकर भी शिवकुमार मुनि संसारसागर तिर गये।।५१।।
अभविसेन ने केवलि प्ररूपित अंग ग्यारह भी पढ़े।
पर भावलिंग बिना अरे संसारसागर न तिरे।।५२।।
कहँतक बतावें अरे महिमा तुम्हें भावविशद्धि की।
तुषमास पद को घोखते शिवभूति केवलि हो गये।।५३।।
भाव से हो नग्न तन से नग्नता किस काम की।
भाव एवं द्रव्य से हो नाश कर्मकलंक का।।५४।।
भाव विरहित नग्नता कुछ कार्यकारी है नहीं।
यह जानकर भाओ निरन्तर आतमा की भावना।।५५।।
देहादि के संग से रहित अर रहित मान कषाय से।
अर आतमारत सदा ही जो भावलिंगी श्रमण वह।।५६।।
निज आत्म का अवलम्ब ले मैं और सबको छोड़ दूँ।
अर छोड़ ममताभाव को निर्ममत्व को धारण करूँ।।५७।।

निज ज्ञान में है आतमा दर्शन चरण में आतमा।
और संवर योग प्रत्याख्यान में है आतमा।।५८।।
अरे मेरा एक शाश्वत आतमा दृगज्ञानमय।
अवशेष जो हैं भाव वे संयोगलक्षण जानने।।५९।।
चतुर्गति से मुक्त हो यदि शाश्वत सुख चाहते।
तो सदा निर्मलभाव से ध्याओ श्रमण शुद्धातमा।।६०।।
जो जीव जीवस्वभाव को सुधभाव से संयुक्त हो।
भावे सदा वह जीव ही पावे अमर निर्वाण को।।६१।।
चेतना से सहित ज्ञानस्वभावमय यह आतमा।
कर्मक्षय का हेतु यह है यह कहें परमातमा।।६२।।
जो जीव के सद्भाव को स्वीकारते वे जीव ही।
निर्देह निर्वच और निर्मल सिद्धपद को पावते।।६३।।
चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।।६४।।
अज्ञान नाशक पंचविध जो ज्ञान उसकी भावना।
भा भाव से हे आत्मन्! तो स्वर्ग-शिवसुख प्राप्त हो।।६५।।
श्रमण श्रावकपने का है मूल कारण भाव ही।
क्योंकि पठन अर श्रवण से भी कुछ नहीं हो भावबिन।।६६।।
द्रव्य से तो नग्न सब नर नारकी तिर्यंच हैं।
पर भावशुद्धि के बिना श्रमणत्व को पाते नहीं।।६७।।
हों नग्न पर दुख सहें अर संसारसागर में रुलें।
जिन भावना बिन नग्नतन भी बोधि को पाते नहीं।।६८।।
मान मत्सर हास्य ईर्ष्या पापमय परिणाम हों।
तो हे श्रमण तननगन होने से तुझे क्या साध्य है।।६९।।
हे आत्मन् जिनलिंगधर तू भावशुद्धी पूर्वक।
भावशुद्धि के बिना जिनलिंग भी हो निरर्थक।।७०।।

सद्धर्म का न वास जहँ तहँ दोष का आवास है।
है निरर्थक निष्फल सभी सद्ज्ञान बिन हे नटश्रमण।।७१।।
जिनभावना से रहित रागी संग से संयुक्त जो।
निर्ग्रन्थ हों पर बोधि और समाधि को पाते नहीं।।७२।।
मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से।।७३।।
हो भाव से अपवर्ग एवं भाव से ही स्वर्ग हो।
पर मलिनमन अर भाव विरहित श्रमण तो तिर्यंच हो।।७४।।
सुभाव से ही प्राप्त करते बोधि अर चक्रेश पद।
नर अमर विद्याधर नमें जिनको सदा कर जोड़कर।।७५।।
शुभ अशुभ एवं शुद्ध इसविधि भाव तीन प्रकार के।
रौद्रार्त तो हैं अशुभ किन्तु शुभ धरममय ध्यान है।।७६।।
निज आत्मा का आत्मा में रमण शुद्धस्वभाव है।
जो श्रेष्ठ है वह आचरो जिनदेव का आदेश यह।।७७।।
गल गये जिसके मान मिथ्या मोह वह समचित्त ही।
त्रिभुवन में सार ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त हो।।७८।।
जो श्रमण विषयों से विरत वे सोलहकारणभावना।
भा तीर्थंकर नामक प्रकृति को बाँधते अतिशीघ्र ही।।७९।।
तेरह क्रिया तप वार विध भा विविध मनवचकाय से।
हे मुनिप्रवर! मनमत्तगज वशकरो अंकुश ज्ञान से।।८०।।
वस्त्र विरहित क्षिति शयन भिक्षा असन संयम सहित।
जिनलिंग निर्मल भाव भावित भावना परिशुद्ध है।।८१।।
ज्यों श्रेष्ठ चंदन वृक्ष में हीरा रतन में श्रेष्ठ है।
त्यों धर्म में भवभावनाशक एक ही जिनधर्म है।।८२।।
व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म हैं।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म है।।८३।।

अर पुण्य भी है धर्म – ऐसा जान जो श्रद्धा करें।
वे भोग की प्राप्ति करें पर कर्म क्षय न कर सकें।।८४।।
रागादि विरहित आतमा रत आतमा ही धर्म है।
भव तरण–तारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है।।८५।।
जो नहीं चाहे आतमा अर पुण्य ही करता रहे।
वह मुक्ति को पाता नहीं संसार में रुलता रहे।।८६।।
इसलिए पूरी शक्ति से निज आतमा को जानकर।
श्रद्धा करो उसमें रमो नित मुक्तिपद पा जाओगे।।८७।।
सप्तम नरक में गया तन्दुल मत्स्य हिंसक भाव से।
यह जानकर हे आत्मन् ! नित करो आतमभावना।।८८।।
आतमा की भावना बिन गिरि–गुफा आवास सब।
अर ज्ञान अध्ययन आदि सब करनी निरर्थक जानिये।।८९।।
इन लोकरंजक बाह्यव्रत से अरे कुछ होगा नहीं।
इसलिए पूर्ण प्रयत्न से मन इन्द्रियों को वश करो।।९०।।
मिथ्यात्व अर नोकषायों को तजो शुद्ध स्वभाव से।
देव प्रवचन गुरु की भक्ति करो आदेश यह।।९१।।
तीर्थंकरों ने कहा गणधरदेव ने गूँथा जिसे।
शुद्धभाव से भावो निरन्तर उस अतुल श्रुतज्ञान को।।९२।।
श्रुतज्ञानजल के पान से ही शान्त हो भवदुखतृषा।
त्रैलोक्यचूड़ामणी शिवपद प्राप्त हो आनन्दमय।।९३।।
जिनवरकथित बाईस परीषह सहो नित समचित्त हो।
बचो संयमघात से हे मुनि ! नित अप्रमत्त हो।।९४।।
जल में रहे चिरकाल पर पत्थर कभी भिदता नहीं।
त्यों परीषह उपसर्ग से साधु कभी भिदता नहीं।।९५।।
भावना द्वादश तथा पच्चीस व्रत की भावना।
भावना बिन मात्र कोरे वेष से क्या लाभ है।।९६।।

है सर्वविरती तथापि तत्त्वार्थ की भा भावना।
गुणथान जीवसमास की भी तू सदा भा भावना।।९७।।
भयंकर भव–वन विषैं भ्रमता रहा आशक्त हो।
बस इसलिए नवकोटि से ब्रह्मचर्य को धारण करो।।९८।।
भाववाले साधु साधे चतुर्विध आराधना।
पर भाव विरहित भटकते चिरकाल तक संसार में।।९९।।
तिर्यंच मनुज कुदेव होकर द्रव्यलिंगी दु:ख लहें।
पर भावलिंगी सुखी हों आनन्दमय अपवर्ग में।।१००।।
अशुद्धभावों से छियालिस दोष दूषित असन कर।
तिर्यंचगति में दुख अनेकों बार भोगे विवश हो।।१०१।।
अतिगृद्धता अर दर्प से रे सचित्त भोजन पान कर।
अति दु:ख पाये अनादि से इसका भी जरा विचार कर।।१०२।।
अर कंद मूल बीज फूल पत्र आदि सचित्त सब।
सेवन किये मदमत्त होकर भ्रमे भव में आजतक।।१०३।।
विनय पंच प्रकार पालो मन वचन अर काय से।
अविनयी को मुक्ति की प्राप्ति कभी होती नहीं।।१०४।।
निजशक्ति के अनुसार प्रतिदिन भक्तिपूर्वक चाव से।
हे महायश ! तुम करो वैयावृत्ति दशविध भाव से।।१०५।।
अरे मन वचन काय से यदि हो गया कुछ दोष तो।
मान माया त्याग कर गुरु के समक्ष प्रगट करो।।१०६।।
निष्ठुर कटुक दुर्जन वचन सत्पुरुष सहें स्वभाव से।
सब कर्मनाशन हेतु तुम भी सहो निर्ममभाव से।।१०७।।
अर क्षमामंडित मुनि प्रकट ही पाप सब खण्डित करें।
सुरपति उरग–नरनाथ उनके चरण में वंदन करें।।१०८।।
यह जानकर हे क्षमागुणमुनि ! मन–वचन अर काय से।
सबको क्षमा कर बुझा दो क्रोधादि क्षमास्वभाव से।।१०९।।

असार है संसार सब यह जान उत्तम बोधि की।
अविकार मन से भावना भा अरे दीक्षाकाल सम ।।११०।।
अंतरंग शुद्धिपूर्वक तू चतुर्विध द्रवलिंग धर।
क्योंकि भाव बिना द्रवलिंग कार्यकारी है नहीं ।।१११।।
आहार भय मैथुन परीग्रह चार संज्ञा धारकर।
भ्रमा भववन में अनादिकाल से हो अन्य वश ।।११२।।
भावशुद्धिपूर्वक पूजादि लाभ न चाहकर।
निज शक्ति से धारण करो आतपन आदि योग को ।।११३।।
प्रथम द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ पंचम तत्त्व की।
आद्यन्तरहित त्रिवर्ग हर निज आत्मा की भावना ।।११४।।
भावों निरन्तर बिना इसके चिन्तवन अर ध्यान के।
जरा–मरण से रहित सुखमय मुक्ति की प्राप्ति नहीं ।।११५।।
परिणाम से ही पाप सब अर पुण्य सब परिणाम से।
यह जैनशासन में कहा बंधमोक्ष भी परिणाम से ।।११६।।
जिनवचपरान्मुख जीव यह मिथ्यात्व और कषाय से।
ही बांधते हैं करम अशुभ असंयम से योग से ।।११७।।
भावशुद्धीवंत अर जिन–वचन अराधक जीव ही।
हैं बाँधते शुभकर्म यह संक्षेप में बंधन–कथा ।।११८।।
अष्टकर्मों से बंधा हूँ अब इन्हें मैं दग्धकर।
ज्ञानादिगुण की चेतना निज में अनंत प्रकट करूँ ।।११९।।
शील अठदशसहस उत्तर गुण कहे चौरासी लख।
भा भावना इन सभी की इससे अधिक क्या कहें हम ।।१२०।।
रौद्रार्त वश चिरकाल से दुःख सहे अगणित आजतक।
अब तज इन्हें ध्या धरमसुखमय शुक्ल भव के अन्ततक ।।१२१।।
इन्द्रिय–सुखाकुल द्रव्यलिंगी कर्मतरु नहिं काटते।
पर भावलिंगी भवतरु को ध्यान करवत काटते ।।१२२।।

ज्यों गर्भगृह में दीप जलता पवन से निर्बाध हो।
त्यों जले निज में ध्यान दीपक राग से निर्बाध हो ।।१२३।।
शुद्धात्म एवं पंचगुरु का ध्यान धर इस लोक में।
वे परम मंगल परम उत्तम और वे ही हैं शरण ।।१२४।।
आनन्दमय मृतु जरा व्याधि वेदना से मुक्त जो।
वह ज्ञानमय शीतल विमल जल पियो भविजन भाव से ।।१२५।।
ज्यों बीज के जल जाने पर अंकुर नहीं उत्पन्न हो।
कर्मबीज के जल जाने पर न भवांकुर उत्पन्न हो ।।१२६।।
भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
गुण–दोष को पहिचानकर सब भाव से मुनिपद गहें ।।१२७।।
भाव से जो हैं श्रमण जिनवर कहें संक्षेप में।
सब अभ्युदय के साथ ही वे तीर्थकर गणधर बनें ।।१२८ ।।
जो ज्ञान–दर्शन–चरण से हैं शुद्ध माया रहित हैं।
रे धन्य हैं वे भावलिंगी संत उनको नमन है ।।१२९।।
जो धीर हैं गम्भीर हैं जिन भावना से सहित हैं।
वे ऋद्धियों में मुग्ध न हों अमर विद्याधरों की ।।१३०।।
इन ऋद्धियों से इसतरह निरपेक्ष हों जो मुनि धवल।
क्यों अरे चाहें वे मुनी निस्सार नरसुर सुखों को ।।१३१।।
करले भला तबतलक जबतक वृद्धपन आवे नहीं।
अरे देह में न रोग हो बल इन्द्रियों का ना घटे ।।१३२।।
छह काय की रक्षा करो षट् अनायतन को त्यागकर।
और मन–वच–काय से तू ध्या सदा निज आतमा ।।१३३।।
भवभ्रमण करते आजतक मन–वचन एवं काय से।
दश प्राणों का भोजन किया निज पेट भरने के लिये ।।१३४।।
इन प्राणियों के घात से योनी चौरासी लाख में।
बस जन्मते मरते हुये, दुख सहे तूने आजतक ।।१३५।।

यदि भवभ्रमण से ऊबकर तू चाहता कल्याण है ।
तो मन वचन अर काय से सब प्राणियों को अभय दे ।।१३६।।
अक्रियावादी चुरासी बत्तीस विनयावादि हैं ।
सौ और अस्सी क्रियावादी सरसठ अरे अज्ञानि हैं ।।१३७।।
गुड़-दूध पीकर सर्प ज्यों विषरहित होता है नहीं ।
अभव्य त्यों जिनधर्म सुन अपना स्वभाव तजे नहीं ।।१३८।।
मिथ्यात्व से आछन्नबुद्धि अभव्य दुर्मति दोष से ।
जिनवरकथित जिनधर्म की श्रद्धा कभी करता नहीं।।१३९।।
तप तपें कुत्सित और कुत्सित साधु की भक्ति करें ।
कुत्सित गति को प्राप्त हों रे मूढ़ कुत्सितधर्मरत ।।१४०।।
कुनय अर कुशास्त्र मोहित जीव मिथ्यावास में ।
घूमा अनादिकाल से हे धीर ! सोच विचार कर ।।१४१।।
तीन शत त्रिषष्ठि पाखण्डी मतों को छोड़कर ।
जिनमार्ग में मन लगा इससे अधिक मुनिवर क्या कहें ।।१४२।।
अरे समकित रहित साधु सचल मुरदा जानियें ।
अपूज्य है ज्यों लोक में शव त्योंहि चलशव मानिये ।।१४३।।
तारागणों में चन्द्र ज्यों अर मृगों में मृगराज ज्यों ।
श्रमण-श्रावक धर्म में त्यों एक समकित जानिये।।१४४।।
नागेन्द्र के शुभ सहसफण में शोभता माणिक्य ज्यों ।
अरे समकित शोभता त्यों मोक्ष के मारग विषैं ।।१४५।।
चन्द्र तारागण सहित ही लसे नभ में जिसतरह ।
व्रत तप तथा दर्शन सहित जिनलिंग शोभे उसतरह ।।१४६।।
इमि जानकर गुण-दोष मुक्ति महल की सीढ़ी प्रथम ।
गुण रतन में सार समकित रतन को धारण करो ।।१४७।।
देहमित अर कर्त्ता-भोक्ता जीव दर्शन-ज्ञानमय ।
अनादि अनिधन अमूर्तिक है कहा जिनवरदेव ने ।।१४८।।

जिन भावना से सहित भवि दर्शनावरण-ज्ञानावरण ।
अर मोहनी अन्तराय का जड़ मूल से मर्दन करें ।।१४९।।
हो घातियों का नाश दर्शन-ज्ञान-सुख-बल अनंते ।
हो प्रगट आतम माहिं लोकालोक आलोकित करें ।।१५०।।
यह आत्मा परमात्मा शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध है।
ज्ञानि है परमेष्ठि है सर्वज्ञ कर्म विमुक्त है।।१५१।।
घन-घाति कर्म विमुक्त अर त्रिभुवनसदन संदीप जो ।
अर दोष अष्टादश रहित वे देव उत्तम बोधि दें ।।१५२।।
जिनवर चरण में नमें जो नर परम भक्तिभाव से ।
वर भाव से वे उखाड़े भवबेलि को जड़मूल से ।।१५३।।
जल में रहें पर कमल पत्ते लिप्त होते हैं नहीं ।
सत्पुरुष विषय-कषाय में त्यों लिप्त होते हैं नहीं ।।१५४।।
सब शील संयम गुण सहित जो उन्हें हम मुनिवर कहें ।
बहु दोष के आवास जो हैं अरे श्रावक सम न वे ।।१५५।।
जीते जिन्होंने प्रबल दुर्द्धर अर अजेय कषाय भट ।
रे क्षमादम तलवार से वे धीर हैं वे वीर हैं ।।१५६।।
विषय सागर में पड़े भवि ज्ञान-दर्शन करों से ।
जिनने उतारे पार जग में धन्य हैं भगवंत वे ।।१५७।।
पुष्पित विषयमय पुष्पों से अर मोहवृक्षारूढ़ जो ।
अशेष माया बेलि को मुनि ज्ञानकरवत काटते ।।१५८।।
मोहमद गौरवरहित करुणासहित मुनिराज जो ।
अरे पापस्तंभ को चारित खड़ग से काटते ।।१५९।।
सद्गुणों की मणिमाल जिनमत गगन में मुनि निशाकर ।
तारावली परिवेष्ठित हैं शोभते पूर्णेन्दु सम ।।१६०।।
चक्रधर बलराम केशव इन्द्र जिनवर गणपति ।
अर ऋद्धियों को पा चुके जिनके हैं भाव विशुद्धवर ।।१६१।।

जो अमर अनुपम अतुल शिव अर परम उत्तम विमल है।
पा चुके ऐसा मुक्ति सुख जिनभावना भा नेक नर ।।१६२।।
जो निरंजन हैं नित्य हैं त्रैलोक्य महिमावंत हैं ।
वे सिद्ध दर्शन-ज्ञान अर चारित्र शुद्धि दें हमें ।।१६३।।
इससे अधिक क्या कहें हम धर्मार्थकाम रु मोक्ष में।
या अन्य सब ही कार्य में है भाव की ही मुख्यता ।।१६४।।
इसतरह यह सर्वज्ञ भासित भावपाहुड जानिये ।
भाव से जो पढ़ें अविचल थान को वे पायेंगे ।।१६५।।

-●-